# अथैकत्रिंशोऽध्यायः

—:०:—

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

## सहस्त्रशीर्षा पुरुष

**सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।**
**स भूमिं सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥१॥**

१. वह पुरुष है (क) 'पुरि वसति' इति पुरुषः=ब्रह्माण्डरूप नगरी में निवास करते हैं (ख) **पुरि शेते**=ब्रह्माण्डरूप नगरी में शयन करते हैं अथवा (ग) **पुनाति रुणद्धि स्यति**= इसे पवित्र करते हैं, आवृत किये हुए हैं और अन्त में इसका अन्त करते हैं (षोऽन्तकर्मणि)। योग के शब्दों में 'क्लेश, कर्म, विपाकाशय' से अपरामृष्ट पुरुषविशेष ही ईश्वर हैं।

२. **पुरुष का स्वरूप**—वे पुरुष **सहस्त्रशीर्षा**=अनन्त सिरोंवाले हैं। **सहस्त्राक्षः**=अनन्त आँखोंवाले हैं, **सहस्त्रपात्**=अनन्त पाँववाले हैं। सहस्त्र शब्द अनन्तवाची है। यही भावना **'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्'** इन शब्दों में भी कही गई कि उस प्रभु की सर्वत्र आँखें हैं, सर्वत्र मुख, बाहु व पाँव हैं। जैसे भौतिक सङ्ग से रहित मुक्तात्मा 'पश्यँश्चक्षुर्भवति'=देखता है तो आँख-ही-आँख हो जाता है, उसे कोई भौतिक आवरण भेदनेवाला नहीं होता, इसी प्रकार उस प्रभु का भी कोई भौतिक आवरण नहीं है, वे सर्वतः आँखों व श्रोत्रोंवाले हैं। ३. **सः**=वह पुरुष **भूमिम्**=(भवन्ति भूतानि यस्मिन्) इस सारे ब्रह्माण्ड को चारों ओर से **स्पृत्वा**=(स्पृ=to protect) आवृत करके रक्षा करते हुए तथा इसके अन्दर निवास (स्पृ=to live) करते हैं।

४. **दशांगुलम्** (क) इस प्रकार वह पुरुष इस ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हुए तथा इसमें निवास करते हुए दस अंगुल परिमाणवाले इस ब्रह्माण्ड को **अत्यतिष्ठत्**=लाँघकर ठहर रहे हैं, अर्थात् इस ब्रह्माण्ड से परे भी वर्त्तमान हैं, यह सारा ब्रह्माण्ड प्रभु के एकदेश में है। जैसे मातृगर्भ में बालक की स्थिति है, उसी प्रकार प्रभु के गर्भ में ब्रह्माण्ड की स्थिति है, वे प्रभु 'हिरण्यगर्भ' हैं, ये सारे ज्योतिर्मय पिण्ड उनके गर्भ में हैं। प्रभु की तुलना में यह ब्रह्माण्ड दशांगुलमात्र ही तो है, चाहे हमारे गणित के परिमाण में यह ब्रह्माण्ड अनन्त-सा प्रतीत होता है, परन्तु उस अनन्त प्रभु की तुलना में तो यह एकदम सान्त है। उसके यह एकदेश में ही है। (ख) 'दशांगुलम्' शब्द का अर्थ तरबूज़ 'watermelon' भी है, उस प्रभु की तुलना में यह सारा संसार 'तरबूज' ही है। 'तरबूज़' का अर्थ यहाँ इसलिए संगत प्रतीत होता है कि इससे ब्रह्माण्ड की अण्डाकृति का कुछ बोध भी हो जाता है, और साथ ही ऊपर ठोस और अन्दर कुछ जल की प्रतीति भी हो जाती है। (ग) **दशांगुलम्**=शब्द हृदयदेश के लिए भी प्रयुक्त होता है, वे प्रभु सबके हृदयों में निवास करते हुए उन सब हृदयों से ऊपर उठे हुए हैं। (घ) पञ्चस्थूलभूत व पञ्चसूक्ष्मभूतमय होने से भी इस ब्रह्माण्ड को 'दशांगुल' कहा जाता है। वे प्रभु इस भौतिक ब्रह्माण्ड को लाँघकर रह रहे हैं। इस सर्वव्यापक प्रभु को अनुभव करनेवाला व्यक्ति भी उस 'नारायण' को अपने अन्दर अनुभव

करता है और अपने को उस नारायण में। इस प्रकार यह स्वयं भी तन्मय होकर 'नारायण' ही हो जाता है।

**भावार्थ**—१. वे प्रभु अनन्त सिरों, आँखों व पाँवोंवाले हैं। २. इस ब्रह्माण्ड को आवृत करके इसकी रक्षा कर रहे हैं और इसके अन्दर निवास कर रहे हैं। ३. वे प्रभु इस दशांगुल जगत् से परे भी हैं।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**ईशानः**। छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

## त्रिविध जीवों का ईशान

**पुरु॑षऽए॒वेद॑ꣳसर्वं॒ यद् भू॒तं यच्च॒ भाव्य॑म्। उ॒ताम्रृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति॥२॥**

१. इस संसार में जन्म के दृष्टिकोण से जीव तीन भागों में विभक्त हैं (क) प्रथम तो वे जो 'यथाकर्म यथाश्रुतम्'=अपने ज्ञान व कर्म के अनुसार किसी शरीर को धारण कर चुके हैं, ये 'भूत' कहलाते हैं, जिनका जन्म हो चुका। (ख) दूसरे वे जीव हैं जो शीघ्र ही समीप भविष्य में जन्म ग्रहण करेंगे। ये 'भाव्य' कहलाते हैं, जिनका जन्म होगा। (ग) इन दोनों से भिन्न तीसरे वे हैं जो हृदयग्रन्थियों के भेदन से, संशयों के छेदन से और कर्मों की क्षीणता व दुर्बलता से ऊपर उठकर उस परावर प्रभु को देखकर 'अमृतत्व' का लाभ कर पाते हैं। ये अन्य जीवों की तरह जन्म-मरण के चक्र में नहीं फँसे रहते, अपितु इस जन्म-मरणचक्र से ऊपर उठकर अमर हो गये हैं। २. **पुरुषः**=ब्रह्माण्डरूप नगरी में शयन व निवास करनेवाला वह प्रभु **एव**=ही **इदम्**=इन **सर्वम्**=सारे **भूतम्**=कर्मानुसार ग्रहीत जन्मवाले भूतों को **यत् च**=और जो **भाव्यम्**=अब समीप भविष्य में ही जन्म ग्रहण करेंगे उन भव्य प्राणियों को **उत**=और **अमृतत्वस्य**=जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठे मुक्तात्माओं को भी **ईशानः**=शासित कर रहे हैं। ये तीनों प्रकार के जीव उस प्रभु के अनुशासन में चल रहे हैं। ये अमर जीव वे हैं **यत्**=जो **अन्नेन**='अद्यते अत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते' उस सबके आधारभूत अन्न नामक प्रभु के द्वारा, अर्थात् उस प्रभु के चिन्तन के द्वारा **अतिरोहति**=इस जन्म-मृत्यु के चक्र को लाँघ जाते हैं। ये तीनों ही प्रभु से शासित होते हैं, प्रभु इनके ईशान हैं। प्रभु की व्यवस्था के अनुसार ही ये सब उस-उस जन्म को धारण कर रहे हैं। मुक्तात्मा भी परामुक्ति के अन्तकाल में उस प्रभु के अनुशासन में होने के कारण ही जन्म ग्रहण करेंगे। इस अनुशासन के कारण ही वे मुक्त होते हुए भी नई सृष्टि के निर्माणादि कार्यों को नहीं कर सकते। ३. वे प्रभु अन्न हैं। उन्हीं के आधार से प्राणिमात्र अन्न को खा रहा है **'मया सोऽन्नमत्ति'**। प्रलय के समय वे प्रभु ही सबको निगल जाते हैं 'अत्ति च भूतानि'। **'आ+नम्'** (यास्क)=इसलिए भी वे प्रभु अन्न हैं, क्योंकि अन्त में सब ओर से प्राणी उसी के प्रति प्रणत होते हैं।

इस अन्न का जो भी आश्रय करता है वह अन्ततोगत्वा जन्म-मरण को लाँघ जाता है (अति-रोहति)। जन्म-मरण से ऊपर उठकर वह परमस्थान में स्थित होता है। ४. सामान्य अन्न से शरीर भूखा मरने से बचता है और इस प्रकार जीव-मृत्यु से ऊपर उठता है, परन्तु इस प्रभुरूप अन्न के सेवन से वह जन्म से भी ऊपर उठ जाता है। जन्म-मरणचक्र से अतिरूढ़ करनेवाला यह प्रभुरूप अन्न सचमुच अद्वितीय है।

**भावार्थ**—वे पुरुष प्रभु 'भूत, भाव्य व अमर' तीनों प्रकार के प्राणियों के ईशान हैं। उस समन्तात् सेवनीय (आनम्) अन्न नामक प्रभु की अनुकम्पा से जीव जन्म-मरण को लाँघ पाता है।

ऋषि:—**नारायण:**। देवता—**पुरुष:**। छन्द:—**निचृदनुष्टुप्**। स्वर:—**गान्धार:**।

## एकपात् व त्रिपात्

**एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।**
**पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥**

१. **अस्य**=इस पुरुष की **एतावान्**=इतनी **महिमा**=महिमा है। प्रथम मन्त्र में दशांगुल जगत् का संकेत है, पञ्चस्थूलभूत व पञ्चसूक्ष्मभूतों से बना हुआ यह दशांगुल जगत् उस प्रभु की ही महिमा है। **'यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः'**=ये हिमाच्छादित पर्वत, समुद्र व पृथिवी उस प्रभु की महिमा का ही प्रतिपादन कर रहे हैं। द्वितीय मन्त्र में 'भूत, भाव्य व अमृतत्व को प्राप्त' जीवों का वर्णन है। ये सब जीव भी प्रभु की महिमा का प्रतिपादन कर रहे हैं। बुद्धिमानों की बुद्धि, बलवानों के बल व तेजस्वियों का तेज, वे प्रभु ही हैं। २. **च**='परन्तु वे प्रभु इन्हीं में समाप्त हो गये हों', ऐसी बात नहीं है, **अतः**=इस सारे ब्रह्माण्ड से **पूरुषः**=वे पुरुष **ज्यायान्**=बहुत अधिक बड़े हैं। ये सारा ब्रह्माण्ड तो प्रभु के एकदेश में है। वेदमन्त्र इसी बात का प्रतिपादन इन शब्दों में करता है कि **विश्वा भूतानि**=सब भूत **अस्य पादः**=इस प्रभु के चतुर्थांश ही हैं। **अस्य त्रिपात्**=इस प्रभु के तीन पाद तो **दिवि**=अपने द्योतनात्मक प्रकाशमय रूप में **अमृतम्**=अमृत हैं। उन तीन पादों में किसी प्रकार का जन्म-मरण का व्यापार नहीं चल रहा है। यह जन्म-मरण या परिवर्तन तो इस चतुर्थांश में ही हो रहा है। शरीर के मरने पर जैसे 'व्यक्ति मर गया' ऐसा व्यवहार होता है, उसी प्रकार इस चतुर्थांश में परिवर्तन होने से इसे 'मृत' कह देते हैं, परन्तु शेष तीन अंश तो 'अमृत' हैं ही।

**भावार्थ**—सारा ब्रह्माण्ड प्रभु के एकदेश में है, उस प्रभु का त्रिपात् द्योतनमय अमृतरूप में है।

ऋषि:—**नारायण:**। देवता—**पुरुष:**। छन्द:—**अनुष्टुप्**। स्वर:—**गान्धार:**।

**त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।**
**ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि॥४॥**

१. **त्रिपात् पुरुषः**=यह तीन पादोंवाला पुरुष **ऊर्ध्वः उदैत्**=इस विविध हलचलवाले अशान्त संसार से ऊपर उठा हुआ है। यह सारे दृश्यमान ब्रह्माण्ड की हलचल उसके इस एक पाद में ही है। **अस्य**=इस प्रभु का **पादः**=एक पाद ही **पुनः**=तो **इह**=इस ब्रह्माण्ड में **अभवत्**=है। यह त्रिपात् और एकपात् का विचार कोई गणित के अंकों में नहीं गिनना। यह प्रभु की अनन्तता के प्रतिपादन के लिए कहने की एक शैलीमात्र है। २. यह सारा संसार दो भागों में बँटा हुआ है। इसमें कुछ 'साशन' है, अशनसहित है, खाता है और कुछ न खानेवाला है। इन्हीं को क्रमशः 'चराचर', जंगम-स्थावर' व 'चेतन-जड़' (जड़-चेतन) कहने की परिपाटी है। **साशनानशने**=इस चराचर संसार में **विष्वङ्**=(वि सु अञ्च) विविध दिशाओं व योनियों में उत्तमता से गति करनेवाला वह प्रत्येक पदार्थ **ततः**=उस संचालक त्रिपात् प्रभु से ही **व्यक्रामत्**=गति कर रहा है। सारी गति का स्रोत, प्रथम गति देनेवाले Prime mover, वे प्रभु ही हैं। उस प्रभु के अनुशासन में नदियाँ बह रही हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे—ये सब उसी से अपने-अपने चक्र में घुमाये जा रहे हैं। जीव भी उसी की व्यवस्था से विविध योनियों को ग्रहण कर रहे हैं। ३. **अभि**=ये सब जीव उसी की शक्ति

से गति कर रहे हैं और उसी की ओर जा रहे हैं। ठीक मार्ग पर जानेवाले तो उसकी ओर जा ही रहे हैं, ग़लत मार्ग पर जानेवाले भी भटक-भटकाकर, ठोकरें खाकर फिर प्रभु की ओर ही जाते हैं। दु:ख पड़ने पर प्रभु का स्मरण हो ही जाता है। एवं, **'सा काष्ठा सा परागतिः'**=वे प्रभु ही सब जीवों की अन्तिम शरण हैं।

**भावार्थ**—सारा चराचर संसार ब्रह्म की ओर जा रहा है, वे ब्रह्म ही गति के स्रोत हैं।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**स्रष्टा**। छन्दः—**अनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

**ततो॑ वि॒राड॑जायत वि॒राजो॒ऽअधि॒ पूरु॑षः।**
**स जा॒तोऽअत्य॑रिच्यत प॒श्चाद् भूमि॒मथो॑ पु॒रः ॥५॥**

१. **ततः**=उस पुरुष (निमित्तकारण) से **विराट्**=एक देदीप्यमान पिण्ड **अजायत**=उत्पन्न हुआ। सांख्यदर्शन में यही 'महत्' नाम से कहा गया है। जो प्रकृति के कणों का साम्यावस्था का पुञ्ज सर्वत्र समरूप से फैला हुआ था, वह सृष्टि के प्रराम्भ में प्रभु द्वारा गति दिये जाने पर केन्द्र की ओर खिंचने लगा, चारों ओर खाली स्थान हो गया। यही आकाश था। सारे कण थोड़े स्थान में आने से भारी हो गये तो ये 'महत्' कहलाये। प्रभु ने उस साम्यावस्थावाली प्रकृति को **महत्**=विराट् व एक हैम पिण्ड का रूप दे दिया। इस पिण्ड का उपादानकारण तो प्रकृति ही थी, निमित्त 'परमात्मा' था। २. **विराजः**=इस विराट् पिण्ड का **अधि**=अधिष्ठातृरूपेण **पूरुषः**=वह पुरुष था। इस महत्तत्त्व से अब अहंकारादिक्रमेण सृष्टि का निर्माण होगा। इस निर्माण में उपादानकारण निश्चय से यह विराट् ही है, परन्तु इस विराट् के अध्यक्ष वे प्रभु हैं। उनकी अध्यक्षता में ही इस चराचर जगत् का निर्माण होता है। ३. **सः**=यह विराट् **जातः**=उत्पन हुआ-हुआ **अत्यरिच्यत**=संसार के किसी भी पदार्थ से अधिक दीप्तिवाला हुआ। प्रारम्भ में यह पिण्ड अग्निमय था। ४. **पश्चात्**=इस विराट् पिण्ड के बन जाने के पश्चात् **भूमिम्**=(भवन्ति भूतानि यस्याम्) प्राणियों के निवासस्थान भूत लोकों को उस अध्यक्ष ने बनाया। प्राणियों के सशरीर होने से पहले इन लोकों को बनना आवश्यक है। इन लोकों का ही अन्वर्थ नाम 'भूमि' है। भूमि से अभिप्राय केवल इस पृथिवी का नहीं। ५. **अथ**=और अब इन लोकों के बन जाने के पश्चात् **पुरः**=शरीर बनाये गये। शरीरों को 'पुरः' इसलिए कहा है कि 'पूर्यन्ते सप्त धातुभिः'=ये रस-रुधिर आदि सप्त धातुओं से पूर्ण हैं। 'पृ पालनपूरणयोः' धातु से बना यह शब्द इस भावना का भी सूचक है कि यह शरीर पालन व पूरण के योग्य है। असुरों की नगरियाँ भी वेद में 'पुर' कहलायी हैं। वहाँ 'पृ' का अर्थ अपने को मुक्त कराना deliver from या बाहर लाना bring out of है। हमें इनसे अपने को क्योंकि मुक्त करने का प्रयत्न करना है, अतः ये भी पुर हैं। अब लोकों व पुरों के बन जाने के बाद सृष्टिक्रम का वर्णन अगले मन्त्र में द्रष्टव्य है।

**भावार्थ**—यह संसार प्रभु द्वारा प्रराम्भ में एक विराट् पिण्ड के रूप में उत्पन्न किया जाता है। उस विराट् पिण्ड से ही इन लोकों व शरीरों की उत्पत्ति होती है।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**विराडनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

## पृषादाज्य का संभरण

**तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ः सम्भृ॑तं पृषद॒ाज्यम्।**
**प॒शूँस्ताँश्च॑क्रे वाय॒व्या॒नार॒ण्या ग्रा॒म्याश्च॒ ये॥६॥**

१. अब तक प्रभु को 'पुरुष' नाम से स्मरण किया था। इसी पुरुष को अब 'यज्ञ' नाम से कहा गया है, क्योंकि वे (क) पूजनीय हैं (देवपूजा)। (ख) प्रकृतिकणों के संगतिकरण से ब्रह्माण्ड का निर्माण करनेवाले हैं। (ग) जीव को उसकी उन्नति के लिए सब-कुछ देनेवाले हैं (दान)। वे प्रभु सचमुच 'यज्ञ' हैं। 'सर्वहुत्' हैं-सब-कुछ देनेवाले हैं। २. **तस्मात्**=उस **यज्ञात्**=यज्ञ नामक प्रभु से **सर्वहुतः** (हु=दान)=सब वस्तुएँ देनेवाले से **पृषदाज्यम्**='अन्नं वै पृषदाज्यम्', 'पयः पृषदाज्यम् श० २.८.४.८। 'पशवो वै पृषदाज्यम्-तै० १.६.३.२ अन्न, दूध तथा पशुओं का **सम्भृतम्**=सम्भरण किया गया। प्राणियों के लिए अन्न व दूध की आवश्यकता है उस अन्न व दूध के उत्पादन में पशु-पक्षी भी साधन हैं। दूध तो उनसे प्राप्त होता ही है। उनके बिना अन्न-उत्पादन भी सम्भव नहीं। (क) 'ट्रैक्टर्स' कभी बैलों के स्थानापन्न हो जाएँगे, इस बात की संभावना नहीं है। ऊबड़-खाबड़ भूमि को सम करने में उनकी उपयोगिता ठीक है, हल चलाने के लिए नहीं। ट्रेक्टर्स से जोते गये बड़े-बड़े खेतों में उपज को कृमि खा जाते हैं, छोटे-छोटे खेतों की मुंडेरों पर बैठी चिड़ियाँ उन कृमियों के संहार से उपज को बचाती थीं। ट्रेक्टर्स ने उन मुंडेरों को समाप्त कर इन पक्षियों के बैठने के स्थान ही समाप्त कर दिये। कितना कीटनाशक द्रव्य हम छिड़कते रहेंगे? (ख) बैलों से खेती में भूमि को खाद भी मिलता रहता था। ट्रेक्टर्स के कारण खाद के कारखाने खोलने भी आवश्यक हो गये। (ग) इस कृत्रिम खाद से भूमि अधिक उपज देकर शीघ्र बंजर होनी शुरू हो गई। इन सब विचारों का अन्तिम परिणाम यही है कि अन्न के उत्पादन में पशु-पक्षियों की उपयोगिता रहेगी ही, अतः ये भी यहाँ 'पृषदाज्य' शब्द से कहे गये हैं। उस प्रभु ने जीव के हित के लिए पृषदाज्य को प्राप्त कराया। ३. ये पशु सामान्यतः तीन भागों में विभक्त होते हैं। मन्त्र कहता है कि उस प्रभु ने **पशून् तान्**=उन पशुओं को **चक्रे**=बनाया जो **वायव्यान्**=वायु में उड़नेवाले थे, अर्थात् जिन्हें हम सामान्य भाषा में पक्षी कहते हैं, **च**=और **ये**=जो **आरण्या**=वन के पशु थे **ग्राम्याः च**=और जो ग्रामों में रहनेवाले थे। शेर आदि जंगली पशुओं का निर्माण किया तथा साथ ही गौ इत्यादि पालतू ग्राम्य पशुओं की भी सृष्टि की। 'तिर्यङ्' शब्द अब तक सामान्यरूप से 'पशु-पक्षी' दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। मनुष्येतर सभी चर प्राणी यहाँ पशु शब्द से विवक्षित है। वे पशु हैं (पश्यन्ति) देखते हैं, समझते नहीं। वे बुद्धि का विकास नहीं कर पाते। वासना के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ से अन्त तक चलते रहते हैं, इसीलिए उन्हें यहाँ 'पशु' इस सामान्य शब्द से कहा है। इन सब पशुओं की उपयोगिता है। शेर न होते तो मृग इतने अधिक बढ़ जाते कि हमारी खेतियों को ख़तरा पैदा हो जाता। मक्खी का मल वमन को रोकने में अचूक औषध का काम देता है। एवं, प्रत्येक प्राणी की उपयोगिता है, जिसको हम अपनी अल्पज्ञता के कारण पूर्णरूपेण समझते नहीं। सृष्टि में इन सब वायव्य, आरण्य व ग्राम्य पशुओं का अपना-अपना स्थान है।

**भावार्थ**—उस सर्वदाता यज्ञ नामक प्रभु ने अन्न व दूध का संभरण किया। उसके लिए ही पक्षियों, आरण्य व ग्राम्य पशुओं का निर्माण किया।

**नोट**—यहाँ 'वायव्य पशुओं' से ऐसा नहीं समझना चाहिए कि किसी युग में कुछ उड़नेवाले पशु भी थे। उड़नेवाले पर्वतों की कल्पना से ऐसा भ्रम हो जाता है। वास्तव में न उड़नेवाले पर्वत थे और न उड़नेवाले पशु। पक्षियों को ही यहाँ 'उड़नेवाले पशु' कहा गया है।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**स्रष्टेश्वरः**। छन्दः—**अनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

## 'वेद-ज्ञान' का प्रादुर्भाव

**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।**
**छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥७॥**

१. **तस्मात्**=उस **यज्ञात्**=ज्ञान का दान करनेवाले अथवा हमारे साथ ज्ञान का सम्पर्क करनेवाले **सर्वहुतः**=सबके लिए ज्ञान देनेवाले प्रभु से **ऋचः**=ऋचाएँ या ऋग्वेद के मन्त्र तथा **सामानि**=साम, अर्थात् सामवेद के मन्त्र **जज्ञिरे**=उत्पन्न हो गये। **तस्मात्**=उसी से **छन्दांसि**=रोगों व युद्धों से बचानेवाले अथर्व के छन्द **जज्ञिरे**=प्रादुर्भूत हुए। **तस्मात्**=उसी से **यजुः**=यजुर्वेद के मन्त्र **अजायत**=हो गये। २. (क) सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु से दिया गया वेदज्ञान चार भागों में विभक्त है। प्रथम ऋग्वेद है, इसमें तृण से लेकर ब्रह्मपर्यन्त सभी पदार्थों के गुण-धर्मों का स्तवन (कथन) है। इसी से इनका नाम 'ऋग्वेद' (ऋच स्तुतौ) हो गया है। (ख) इस प्रकृति का ज्ञान करते हुए हम प्रसंगवश कण-कण में प्रभु की महिमा का भी अनुभव करते हैं और उस प्रभु के प्रति नतमस्तक होते हैं। इसी नमन व उपासना का विषय 'सामवेद' में वर्णित है। (ग) यदि प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करके उसका ठीक उपयोग करेंगे और प्रभु के अविस्मरण से विलास में न फँसेंगे तथा परस्पर प्रेम से चलेंगे तो रोगों व युद्धों से बचे रहेंगे, परन्तु मनुष्य की अल्पज्ञता के कारण वे युद्ध व रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं, 'उनसे अपना छादन (रक्षण) कैसे करना' यही विषय अथर्व-मन्त्रों का है, इसी से उन्हें यहाँ 'छन्दांसि' शब्द से स्मरण किया है। (घ) अब स्वस्थ व शान्त बनकर हमने अपना जीवन जिन श्रेष्ठतम कर्मों में बिताना है, उन्हीं कर्मों का प्रतिपादन 'यजुर्वेद' में है। यह यजुर्वेद इसीलिए 'कर्मवेद' कहलाता है। मनुष्य को अपना जीवन इन्हीं यज्ञात्मक कर्मों में लगाना है। इनको करता हुआ ही वह 'यज्ञ' बनता है और 'यज्ञ' नामवाले उस प्रभु को पाता है। ३. मानव-उन्नति के लिए ज्ञान देना आवश्यक था। ज्ञान के बिना किसी प्रकार की उन्नति सम्भव नहीं, अतः प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में यह वेद-ज्ञान दिया।

**भावार्थ**—प्रभु-प्रदत्त वेद-ज्ञान से हम प्रतिदिन उन्नति करते हुए प्रभु को प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

## मनुष्य जीवन व पशुजीवन—दाएँ व बाएँ हाथ

**तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादतः।**
**गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः॥८॥**

१. पशुओं की उत्पत्ति का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं। प्रस्तुत मन्त्र में कुछ पशुओं का विशेषरूप से उल्लेख है, जिनका हमारे साथ विशेष सम्बन्ध है, वे पशु निम्न है—२. **तस्मात्**=उस प्रभु से **अश्वाः**=घोड़े **अजायन्त**=प्रादुर्भूत किये गये, **ये के च**=और जो कोई **उभायादतः**=दोनों ओर दाँतवाले, घोड़े के स्थानापन्न 'खच्चर, गधा' आदि पशु थे, वे भी प्रादुर्भूत हुए। मैदान में जो स्थान घोड़े का है, वही पर्वतप्रदेश में खच्चर आदि का है। **तस्मात्**=उस प्रभु से **ह**=निश्चय से **गावः**=गौवें **जज्ञिरे**=उत्पन्न हुईं। **तस्मात्** =उसी प्रभु से

**अजा-अवयः**=बकरियाँ व भेड़ें **जाताः**=उत्पन्न हुईं। ३. इस प्रकार 'गौ, घोड़ा बकरी व भेड़' इन चार पशुओं का यहाँ उल्लेख है। इनमें गौ और घोड़ा मनुष्य के दाहिने हाथ हैं तो बकरी और भेड़ बायाँ हाथ हैं। **'तवेमे पञ्च पशवः गौरश्वः पुरुषो अजावयः'** इस मन्त्रभाग में मनुष्य मध्य में है, एक ओर गौ व घोड़ा दूसरी ओर अजा और अवि हैं। मानव जीवन से इन चारों की अत्यन्त घनिष्ठता है। गौ अपने दूध से उसकी बुद्धि को सात्त्विक बनाकर मनुष्य के ज्ञान को बढ़ाती है। घोड़ा व्यायामादि में सहायक होकर शक्ति-वृद्धि का कारण बनता है। बकरी का दूध 'सर्वरोगापह' होने से मनुष्य को नीरोग व धनार्जन के योग्य बनता है। भेड़ ऊन देकर सरदी से उसकी रक्षा करती है और उसे उचित श्रम के योग्य बनाती है। ४. इन चारों में भी **'स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते'** इस मन्त्र में 'गौ, मनुष्य व घोड़ा' इन शब्दों में गौ को मनुष्य का दायाँ हाथ माना है तो घोड़े को बायाँ।

**भावार्थ**—हम पशुओं की उपयोगिता को समझकर उनका भी ध्यान करनेवाले बनें 'गौ' को तो घर का अत्यन्त आवश्यक अङ्ग समझकर अवश्य ही पालें।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

## प्रभु का प्रोक्षण

**तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।**
**तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये॥९॥**

१. **तम्**=उस **यज्ञम्**=उपासनीय (पूजा) संगतिकरणयोग्य अथवा समर्पणीय (दान) प्रभु को **बर्हिषि**=उस हृदय में, जिसमें से वासनारूप घासफूँस का उद्बर्हण कर दिया गया है, **प्रौक्षन्**=सिक्त करते हैं। हृदय मानो क्षेत्र है और उस क्षेत्र को ये लोग प्रभु-चिन्तनरूप जल से सींचते हैं। इस क्षेत्र में से वे वासनाओं को उखाड़ डालते हैं और इसी वासनाओं के उद्बर्हण के परिणामस्वरूप इस खेत को यहाँ 'बर्हिः' नाम दिया गया है। वे प्रभु यज्ञ हैं। वे प्रभु पूजनीय हैं, संगमनीय हैं। हमें चाहिए कि हम अपने को उस प्रभु के प्रति दे डालें। यह 'दे डालना' ही समर्पण है। २. किस प्रभु का सेचन करते हैं? **पुरुषः**=उसका, जो इन शरीररूप पुरियों में निवास करते हैं (पुरि वसति, पुरि शेते वा)। उस प्रभु, का जो **अग्रतः**=पहले से ही **जातम्**=विद्यमान है। प्रभु हमारे हृदयों में पहले से हैं ही। हमें केवल हृदयों का शोधन करके, उन्हें बर्हि बनाकर प्रभु की ज्योति को देखने का प्रयत्न करना है। ३. **तेन**=उस प्रभु से **अयजन्त**=मेल करते हैं (संगतिकरण)। कौन? (क) **देवाः**=जो व्यक्ति अपने हृदयों से आसुरवृत्तियों का उद्बर्हण करके उन हृदयों को दैवीवृत्तियों से भरते हैं। दिव्यवृत्तियों को अपनाकर ही ये देव उस महादेव से मेल के अधिकारी होते हैं। (ख) **साध्याः**=(साध्नुवन्ति परकार्याणि) जो सदा परार्थ के कार्यों को सिद्ध करने में लगे हैं। जिनके हाथ सदा यज्ञों में व्यापृत हैं। 'देव शब्द उपासनाकाण्ड का संकेत करता था तो 'साध्य' शब्द कर्मकाण्ड को संकेतित कर रहा है। (ग) **ये च ऋषयः**=और जो तत्त्वद्रष्टा ज्ञानी हैं। 'ऋषि' शब्द ज्ञानकाण्ड का प्रतीक है। प्रभु से मेल उन्हीं लोगों का होता है जो अपने जीवन में उपासना, कर्म व ज्ञान तीनों का सुन्दर समन्वय करते हैं।

**भावार्थ**—हम अपने हृदयों को पवित्र बना, वहाँ प्रभु की ज्योति को जगाएँ। देव, साध्य व ऋषि बनकर अर्थात् हृदय, हस्त व मस्तिष्क तीनों की उन्नति करके प्रभु से अपना मेल करें।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

### एक प्रश्न

**यत्पुरु॑षं॒ व्यद॑धुः कति॒धा व्य॑कल्पयन्।**
**मुखं॒ किम॑स्यासी॒त्किं बा॒हू किमू॒रू पादा॑ऽउच्येते॥१०॥**

१. **यत्**=जब **पुरुषम्**=उस पुरुष प्रभु से **व्यदधुः**=ये 'देव, साध्य व ऋषि' **व्यकल्पयन्**=(वि+कल्पय्=सामर्थ्य) अपने को विशिष्ट सामर्थ्यवाला बनाते हैं। प्रभु के धारण से यह परिणाम निश्चित है कि प्रभु की शक्ति इन उपासकों को प्राप्त होती है। यहाँ जिज्ञासु के मन में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस प्रभु के धारण करनेवाले को किस प्रकार का उत्कृष्ट सामर्थ्य प्राप्त होता है? २. इसी प्रश्न को जिज्ञासु कुछ विस्तार से इस प्रकार करता है कि (क) **अस्य**=इस प्रभु के धारण करनेवाले का **मुखम्**=मुख **किम् आसीत्**=क्या हो जाता है? (ख) **किं बाहू**=इसकी बाहुएँ क्या बन जाती हैं? (ग) **किम् ऊरू**=इसकी जाँघें क्या हो जाती हैं? (घ) **पादा**=इसके पाँव **किम् उच्येते**=कैसे कहे जाते हैं? ३. यहाँ प्रश्न है कि यह प्रभु का धारण करनेवाला कैसा होता है। एक समान्य व्यक्ति के और इसके मुख में क्या अन्तर होता है? इसकी बाहुएँ क्या बन जाती हैं? इसकी जाँघों व पाँवों का क्या नाम पड़ जाता है? सामान्य व्यक्ति के अङ्गों में क्या कमी होती है। जो इस प्रभु का पोषण करनेवाले में नहीं रहती! इतनी बात तो ठीक है कि उसके अङ्ग शक्तिशाली बन जाते हैं, परन्तु 'उनमें क्या शक्ति आ जाती है'? यह प्रश्न है, जिसका उत्तर अगले मन्त्र में देते हैं।

**भावार्थ**—प्रभु को धारण करनेवाले मनुष्य के मुख आदि में एक विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जो उसे सामान्य पुरुषों से विशिष्ट बना देती है।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

### प्रश्न का उत्तर

**ब्रा॒ह्म॒णो॑ऽस्य॒ मुख॑मासीद् बा॒हू रा॑ज॒न्यः॒ कृ॒तः।**
**ऊ॒रू तद॑स्य॒ यद्वैश्यः॑ प॒द्भ्याᳬ शू॒द्रोऽअ॑जायत॥११॥**

१. **अस्य**=इस प्रभुभक्त का **मुखम्**=मुख **ब्राह्मणः**=ब्राह्मण **आसीत्**=हो जाता है। यह प्रभुभक्त अपने मुख से सदा ब्रह्म का प्रतिपादन करनेवाला (ब्राह्मण) बनता है, इसका मुख ज्ञान का प्रसार करता है। २. **बाहू**=इस प्रभुभक्त की भुजा **राजन्यः**=क्षत्रिय **कृतः**=कर दी गई हैं। **'स विशो अरज्यत ततो राजन्यो अजायत'**=प्रकृति का रञ्जन करने से ये राजन्य बनी हैं। इसकी भुजाएँ प्रजा के रक्षण में व्याप्त होने से प्रजा को आनन्दित करनेवाली हैं, अतः राजन्य हैं। ३. **यत्**=जो **अस्य**=इसकी **ऊरू**=जाँघें हैं **तत्** =वे ही **वैश्यः**=वैश्य हैं। अथर्व में यह पाठ 'मध्यं तदस्य यद्वैश्यः' है। 'ऊरू' मध्यभाग का ही प्रतीक है, पेट भी उसमें समाविष्ट है। जिस प्रकार पेट रुधिरादि सब धातुओं का निर्माण करता है इसी प्रकार इस प्रभुभक्त की ऊरू भी निर्माण-कार्य में व्याप्त रहती हैं, कभी थकती नहीं। **'कृषिगोरक्ष-वाणिज्ये'**=कृषि, गोरक्षा व वाणिज्य ही वैश्य के कर्म हैं। यह प्रभुभक्त भी इन्हीं जैसे निर्माण के कार्यों में लगा रहता है। ४. **पद्भ्याम्**=पाँवों से यह प्रभुभक्त **शूद्रः**=शूद्र **अजायत**=हो जाता है। 'शूद्र' अर्थात् शु-द्रवति=तीव्र गति करता है। यह प्रभुभक्त बड़ा क्रियाशील होता है। इसमें प्रमाद, आलस्य व निद्रा स्थान नहीं कर लेती, यह अप्रमत्त होकर सब नियत कर्मों को शीघ्रता से करता है।

**भावार्थ**—प्रभुभक्त ज्ञान का प्रचारक, निर्बलों का रक्षक, सभी का पालक तथा शीघ्रता से कार्यों को करनेवाला होता है, दूसरे शब्दों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र बनता है।

**नोट**—१. प्रस्तुत मन्त्र में प्रसंगवश वर्णव्यवस्था का भी संकेत हो गया है। समाज का शरीर ब्राह्मणरूप मुखवाला है, क्षत्रिय इसकी भुजाएँ हैं, इसका मध्यभाग ही वैश्य है और इसके पाँव शूद्र हैं। ब्राह्मण वही है जो मुख की भाँति ज्ञान का प्रसार करनेवाला है, क्षत्रिय भुजाओं की तरह रक्षक है। वैश्य ने पेट की तरह सब अन्नादि का उत्पादन करना है और शूद्र ने अतन्द्र होकर सेवा-कार्य में व्याप्त रहना है। एवं, वर्णव्यवस्था गुण-कर्मों पर ही आश्रित है। (क) मुख को सर्दी-गर्मी नहीं सताती, अन्य शरीरांगों की अपेक्षा यह अधिक तपस्वी है, ब्राह्मण को भी इसी प्रकार तपस्वी बनना है। मुख स्वादिष्ठ वस्तु को अपने पास न रखकर पेट में भेज देता है, इसी प्रकार ब्राह्मण अपरिग्रही बनाये हैं। भेंट में प्राप्त बहुमूल्य वस्तु को यह प्रजाहित के लिए दान कर देता है। (ख) भुजाओं का काम पालन है, ये शक्तिशाली होती हैं, इसी प्रकार क्षत्रिय ने शक्तिशाली बनकर प्रजा की रक्षा करनी है। वैश्य पेट की भाँति सभी को देकर स्वयं पतला बना रहता है। पेट का सौन्दर्य पतलेपन में ही है। वैश्य का सौन्दर्य भी, देकर निर्धन बनने में ही है। पाँव बिना असूया के चलते है, इसी प्रकार बिना किसी खीझ के शूद्र ने सेवा करनी है।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**अनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

## प्रभुभक्त कैसा बन जाता है?

**चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत।**
**श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥१२॥**

१. यद्यपि मन्त्र संख्या १० में प्रश्न 'मुख, बाहु, ऊरु और पाद' के विषय में था और उसका उत्तर ११वें मन्त्र में ही दे दिया गया है तथापि प्रश्न का उत्तर विस्तार से देते हुए कहते हैं कि **मनसः**=मन से यह प्रभुभक्त **चन्द्रमा**=चन्द्र **जातः**=हो जाता है। 'चन्द्र' शब्द 'चदि आह्लादे' से बनकर आह्लाद व प्रसन्नता का संकेत करता है। इसका मन सदा प्रसन्न रहता है। मनःप्रसाद ही सर्वोत्कृष्ट तप है। संसार के सुख-दुःख इसके मन को क्षुब्ध नहीं करते। यह चन्द्रमा के समान सदा आह्लादमय रहता है। २. **चक्षोः ( चक्षुषः )**=चक्षु से **सूर्यः**=सूर्य **अजायत**=हो जाता है। जैसे सूर्य से प्रकाश की किरणें निकलकर अन्धकार को नष्ट कर देती हैं, इसी प्रकार इसकी चक्षु से ज्ञान की किरणें प्रसृत होकर लोगों के अज्ञानान्धकार को समाप्त कर देती हैं। ऐसा ही व्यक्ति 'विलक्षण' कहलाता है। ३. **श्रोत्रात्**=श्रोत्र (कान) से यह **वायुप्राणश्च**=वायु और प्राण होता है। (क) श्रोत्र का प्रथम अर्थ है 'कान'। कान से वायु=गतिशील (वा गतौ) बनता है, अर्थात् इसे कोई बात कही जाती है तो उसे ध्यान से सुनता है और तदनुसार कार्य करता है, (does not turn a deaf ear to advice) एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल नहीं देता। 'सुनना और करना' यही श्रोत्र का वायु बनना है। (ख) श्रोत्र का दूसरा अर्थ है 'योग्यता' (Proficiency) 'उन्नति', 'विशेषतः ज्ञान की उन्नति'। इस ज्ञान की उन्नति से यह 'प्राण' बनता है, अर्थात् ज्ञान की उन्नति से यह प्राणों को उन्नत करता है। किसी एक इन्द्रिय की शक्ति के विकास के स्थान में यह प्राणों का विकास करता है, क्योंकि प्राणों के विकास से सभी इन्द्रियों का विकास हो जाता है। (ग) **मुखात्**=मुख से **अग्निः**=अग्नि **अजायत**=हो जाता है। अग्नि के दो कार्य होते हैं (क) योजन, (ख) भेदन। यह प्रभुभक्त भी योजन और भेदन की

शक्तिवाले मुखवाला हो जाता है। वर देकर यह किसी भी व्यक्ति का उत्तमता से योजन कर देता है तो शाप देकर यह भेदन भी कर पाता है। केवल मिलानेवाला है, नकि मिटानेवाला।

**भावार्थ**—प्रभुभक्त सदा प्रसन्न, प्रकाशमय, गतिशील-प्राणशक्तिसम्पन्न और अग्नि के समान योजक व भेदक बन जाता है।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**अनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**॥

### लोक-कल्याण

**नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।**
**पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२॥ऽअकल्पयन्॥१३॥**

१. **नाभ्या**=(नाभ्यै) नाभि के लिए अथवा नाभि के हेतु से **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष **आसीत्**=होता है। नाभि केन्द्र है, सारी नस-नाड़ियाँ अन्त में यहीं बँधी हैं। इस केन्द्र के ठीक रखने से यह प्रभुभक्त मध्यमार्ग में चलनेवाला (अन्तरा+क्षि=बीच में चलना) होता है। शरीर के केन्द्र को ठीक रखने के लिए मध्यमार्ग में रहना आवश्यक है। २. **शीर्ष्णः**=मस्तिष्क से **द्यौः**=द्युलोक **समवर्त्तत**=हो जाता है। जिस प्रकार द्युलोक जगमगाता है, इसी प्रकार इस प्रभुभक्त का मस्तिष्क भी ज्ञान के सूर्य व विज्ञान के नक्षत्रों से चमकता है। ३. **पद्भ्याम्**=पाँव से यह **भूमिः**=भूमि हो जाता है। पाँव (पद गतौ) गति के प्रतीक हैं। भूमि को भूमि इसलिए कहते हैं कि इसमें प्राणी होते हैं (भवन्ति भूतानि यस्याम्)। यह प्रभुभक्त अपनी गति के द्वारा सब प्राणियों के निवास का कारण बनता है। इसकी क्रिया रक्षक है, नकि नाशक। ४. **श्रोत्रात्**=श्रोत्र से **दिशः**=यह दिश् बन जाता है। श्रोत्र का दूसरा अर्थ वेद है। यह अपने जीवन के सब निर्देश (आदेश व सन्देश) वेद से ही प्राप्त करता है। इसका जीवन वेदानुकूल होता है। '**धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः**'=धर्म के लिए परमप्रमाण श्रुति ही है। ५. **तथा**=उस प्रकार—ऊपर कथित प्रकार से यह प्रभुभक्त **लोकान्**=इस पिण्ड के एक-एक लोक (Locality) को—अङ्ग-प्रत्यङ्ग को **अकल्पयन्**= शक्तिशाली बनाता है। शक्तिसम्पन्न बनकर यह प्रभुभक्त 'पावकवर्ण, शुचि व विपश्चित्' बन जाता है।

**भावार्थ**—यह प्रभुभक्त सदा मध्यमार्ग पर चलनेवाला, जगमगाते मस्तिष्कवाला, निर्माणात्मक क्रियाओं में लगा हुआ, वेद के अनुसार जीवन-मार्ग पर चलता हुआ शक्तिशाली अङ्गोंवाला बनता है।

**नोट**—प्रस्तुत मन्त्रों में विराट् को पुरुष का शरीर मानकर यह भी संकेत दिया गया है कि उस विराट् शरीर की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, पाँव से भूमि, श्रोत्र से दिशाएँ (१३) मन से चन्द्रमा, आँख से सूर्य, श्रोत्र से वायु व प्राण और मुख से अग्नि (१२) की उत्पत्ति हुई। आगे चलकर अन्तरिक्ष ही हमारे शरीर में नाभि बनकर रहने लगा, द्युलोक सिर के रूप में, पृथिवी पाँव में, दिशाएँ श्रोत्र के रूप में आकर यहाँ रहे। चन्द्रमा ही मन बना, सूर्य आँख, वायु और प्राण श्रोत्र और अग्नि मुख बनकर शरीर में रहा। विराट् पिण्ड से आधिदैविक जगत् के दैवों की उत्पत्ति हुई और इन देवों से पिण्ड में उस-उस इन्द्रिय की उत्पत्ति हो गई।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

### सौन्दर्य, तेजस्विता, त्याग—एक महान् यज्ञ (संगम)

**यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।**
**वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः॥१४॥**

१. **यत्**=जब **हविषा** (हु=दान)=हविरूप त्याग के पुञ्ज **पुरुषेण**=ब्राह्मण्डरूप पुरी में निवास करनेवाले प्रभु से **देवाः**=देवलोक–दैवीवृत्ति को धारण करनेवाले व्यक्ति **यज्ञम्**=संगतिकरण को, सम्बन्ध को **अतन्वत**=विस्तृत करते हैं तब **अस्य**=इस प्रभु से मेल करनेवाले व्यक्ति के लिए **वसन्तः**=वसन्तऋतु **आज्यम्**=आज्य **आसीत्**=हो जाती है **ग्रीष्मः**=ग्रीष्मऋतु **इध्मः**=समिधाएँ और **शरत् हविः**=शरद्‌ऋतु हवि हो जाती है। २. दैवीवृत्तिवाले मनुष्य त्याग के पुञ्ज प्रभु से अपना मेल करते हैं। प्रभु से मेल बढ़ाने का परिणाम यह होता है कि इनका जीवन भी त्यागमय बनता है। इस अभौतिक वृत्ति का ही परिणाम होता है कि वसन्तऋतु इस त्यागमय जीवनवाले के लिए 'आज्य' हो जाती है। आज्य शब्द 'अञ्ज' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है 'व्यक्त करना'। वसन्तऋतु इस प्रभु के उपासक के लिए प्रभु की महिमा को व्यक्त करनेवाली बन जाती है। चारों ओर वनस्पतियों के नवपल्लव, पुष्प व फल इस प्रभु के उपासक के लिए प्रभु-दर्शन के द्वार बन जाते हैं। इसे ये सब प्रभु का गुणगान करते प्रतीत होते हैं। ४. ग्रीष्मऋतु इस त्यागी भक्त के लिए 'इध्मं'=दीप्ति का प्रतीक हो जाती है। जैसे ग्रीष्म में सूर्य अपने पूरे बल से प्रचण्डरूप में चमक रहा होता है, उसी प्रकार यह उपासक प्रभु की अत्यन्त ज्योतिर्मय ज्ञानदीप्ति की कल्पना करता है। सूर्यकिरणें कृमियों की ध्वंसक बनती हैं तो प्रभु की ज्योति की किरणें हृदयान्धकार को नष्ट करनेवाली होती हैं ५. इस प्रभु के संगी के लिए सब पत्तों को शीर्ण करती हुई शरद् भी हवि का संकेत बन जाती है। शरद् (autumn) में पत्ते शीर्ण हो जाते है। यह प्रभु-भक्त भी सर्वस्व का त्याग करता हुआ, शरत् से हविरूप बनना सीखता है।

**भावार्थ**—प्रभुभक्त के लिए वसन्त प्रभु की महिमा को दिखाती है तो ग्रीष्म ज्ञानदीप्ति को और शरत् त्यागशीलता को। वसन्त सौन्दर्य को, ग्रीष्म ज्योति को, शरत् त्याग को संकेतित करती है।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**अनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**॥

## पशुबन्धन

**सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।**
**देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरुषं पशुम्॥१५॥**

१. **देवाः**=देवलोग **यत्**=जब **यज्ञम्**=प्रभु के साथ मेल को **तन्वानाः**=विस्तृत करते हुए **पुरुषम्**=पौरुषवाले **पशुम्**=इस काम-क्रोधरूप पशु को **अबध्नन्**=बाँधते हैं तब **अस्य**=इस यज्ञ का विस्तार व पशुबन्धन करनेवाले के **सप्त**=सात **'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्'** कर्णादि ऋषि **परिधयः**=परिधिरूप, बड़ी मर्यादा में चलनेवाले **आसन्**=हो जाते हैं और **त्रिःसप्त**=शरीर की इक्कीस शक्तियाँ **समिधः**=अत्यन्त समृद्धि व दीप्तिवाली **कृताः**=की जाती हैं। २. प्रभुमेल करने योग्य हैं, अतः यज्ञ हैं। यज्ञ का अर्थ 'मेल' भी है। देव व समझदार लोग प्रभु से मेल करते हैं, नकि प्रकृति से। माधुर्यवाली वस्तु जैसे मधुर कहलाती है उसी प्रकार पौरुषवाले इस काम को यहाँ पुरुष कहा गया है। उपनिषद् में 'कामः पशुः क्रोधः पशु' इन शब्दों में काम-क्रोध को पशु कहा गया है। प्रभु से मेल का ही यह परिणाम होता है कि इस पशु को हम बाँध पाते है, अपना क़ैदी बना लेते हैं। यह वशीभूत काम हमारे वेदाधिगम व वैदिक कर्मयोग का साधन बनता है। इस प्रकार पशु मनुष्य का कार्यवाहक बन जाता है। ३. काम-क्रोध को वशीभूत करनेवाले इस यज्ञमय पुरुष के दो कान, दो आँख, दो नासिका-छिद्र व मुखरूप सब इन्द्रियाँ परिधि बन जाती हैं। परिधि=मर्यादा, इसकी इन्द्रियाँ सदा मर्यादा में रहती हैं, उसका उल्लंघन नहीं करतीं। दूसरे शब्दों में इसके इन्द्रियरूप अश्व सन्मार्ग का ही आक्रमण करते हैं, मार्ग से रेखामात्र भी विचलित नहीं

होते। ४. इन्द्रियों के सदा सन्मार्ग पर चलने का यह परिणाम होता है कि इसकी इक्कीस शक्तियाँ सदा दीप्त रहती हैं। इसकी शक्तियाँ चमक उठती हैं। इन्द्रियों का मर्यादा में रहना और शक्तियों के दीपन में कार्यकारण भाव तो है ही।

**भावार्थ**—प्रभुभक्ति व प्रभु से मेल के तीन परिणाम हैं १. काम-क्रोध का वशीकरण २. इन्द्रियों का मर्यादा में रहना और ३. शक्तियों का वर्धन व दीपन।

ऋषिः—**नारायणः**। देवता—**पुरुषः**। छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

## मुख्य धर्म

**य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन्।**
**ते ह॒ नाकं॑ महि॒मान॑ः सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥१६॥**

१. **'यज्ञो वै विष्णुः'**=इन शब्दों में ब्राह्मणों ने विष्णु=सर्वव्यापक प्रभु को 'यज्ञ' कहा है। मनुष्य में भी जब 'देवपूजा, संगतिकरण तथा दान की भावनाएँ आ जाती हैं तब यह भी यज्ञ को अपना रहा होता है। मनुष्य की उन्नति के लिए आवश्यक है कि (क) वह 'माता, पिता, आचार्य, अतिथि व प्रभु' इनको देव जानकर उनकी पूजा करे। इनके कथनों का आदर करता हुआ तदनुसार अपना आचरण बनाये। (ख) संसार में सदा सबके साथ मेल से चले। उसकी जिह्वा का माधुर्य सभी को उसकी ओर आकृष्ट करनेवाला हो। (ग) वह सदा दान देनेवाला बने। यज्ञशेष को खाये। त्यागपूर्वक उपभोग करे। ये तीन बातें ही मिलकर यज्ञ कहलाती हैं। यज्ञनामक विष्णु की उपासना इस यज्ञ से ही होती है। **देवाः**=देवलोग **यज्ञेन**=देवपूजा, संगतिकरण व दान से **यज्ञम्**=पूजनीय, संगतिकरणीय, समर्पणीय प्रभु को **अयजन्त**=पूजते हैं, उसके साथ अपना मेल बढ़ाते हैं। ३. **तानि**=ये देवपूजा, संगतिकरण और दान ही **धर्माणि**=धारणात्मक उत्तम कर्म हैं। ये **प्रथमानि**=मुख्य हैं और जीव का 'प्रथ-विस्तारे' विस्तार करनेवाले हैं। ३. **ते**=ये **महिमानः**=(मह पूजायाम्) प्रभु के सच्चे उपासक **ह**=ही **नाकम्**=जहाँ दुःख है ही नहीं (न अकं यत्र) उस आनन्दघन प्रभु को **सचन्त**=प्राप्त होते हैं, सेवन करते हैं। प्रभु ही मोक्षलोक है, मुक्त जीव प्रभु में ही विचरते हैं (सह ब्रह्मणा विपश्चिता)। यह मोक्ष-लोक वह है **यत्र**=जहाँ **पूर्वे**=सृष्टि के प्रारम्भ में होनेवाले 'अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा' आदि ऋषि, इन ऋषियों के ही समान अपने में ज्ञान का पूरण करनेवाले (पृ=पूरण) ज्ञानीलोग, **साध्याः**=सदा उत्तम कार्यों के द्वारा लोकहित का साधन करनेवाले कर्मठ लोग तथा **देवाः**=अपने मन में 'अद्रोह,' अनुग्रह व दान' की दिव्य भावनाओं को जगानेवाले भक्त-लोग **सन्ति**=निवास करते हैं, विद्यमान रहते हैं। इस नाकलोक के अधिकारी ये 'पूर्वे, साध्याः और देवाः' ही हैं। (क) देवपूजा से—माता-पिता व आचार्य आदि के आदर से इन्होंने अपने मस्तिष्क में ज्ञान व पूरण किया है अतएव **पूर्व**=पूरण करनेवाले कहलाये हैं। (ख) सबके साथ संगति व मेल से चलते हुए इन्होंने सर्वहितकारी यज्ञों का साधन किया है, अतः साध्य बने हैं, और (ग) अन्त में सदा दान-धर्म को अपनाने से ये (देवो दानात्) देव नामवाले हुए हैं। ये ही प्रभु-प्राप्ति के सच्चे अधिकारी हैं और इस जीवन के अन्त में परामुक्ति को प्राप्त करके प्रभु में स्थित होते हैं।

**भावार्थ**—'देवपूजा, संगतिकरण व दान' ही मुख्य धर्म हैं, इन्हें अपनानेवाला प्रभु को अपना पाता है।

ऋषिः—**उत्तरनारायणः**। देवता—**आदित्यः**। छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

## अमैथुनी सृष्टि—आजान देवत्व

**अ॒द्भ्यः सम्भृ॑तः पृथि॒व्यै रसा॑च्च वि॒श्वक॑र्मणः॒ सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑।**
**तस्य॒ त्वष्टा॑ वि॒दध॑द्रू॒पमे॑ति॒ तन्मर्त्य॑स्य देव॒त्वमा॒जान॒मग्रे॑ ॥१७॥**

१. 'मनुष्य का शरीर किस प्रकार बनता है' इसपर विचार करते हुए उपनिषद् के अनुसार जल पाँचवीं आहुति में पुरुष संज्ञावाले होते हैं। (क) सर्वप्रथम श्रद्धा=जलीय कणों की धारकशक्ति की द्युलोक में आहुति देते हैं (जल वाष्पीभूत हो द्युलोक में पहुँचता है) इससे सोम की उत्पत्ति होती है। (ख) सोम की आहुति पर्जन्य में, इससे वृष्टि होती है, (ग) वृष्टि की आहुति पृथिवी में, उससे अन्न उत्पन्न होता है। (घ) अन्न की आहुति पुरुष में, उससे रेतस् उत्पन्न होता है। (ङ) इस रेतस् की आहुति स्त्री में, इससे गर्भ होता है। इस प्रकार जल पाँचवीं आहुति में पुरुष संज्ञावाले हो जाते हैं। मन्त्र में कहा है कि **अद्भ्यः**=जलों से **सम्भृतः**=मनुष्य-शरीर का संभरण हुआ है। आजकल पाँचवीं आहुति रेतस् (आपः=रेतः) की स्त्री-शरीर में दी जाती है और वहाँ शरीर का निर्माण होता है, परन्तु सृष्टि के प्रारम्भ में जब ये शरीर न थे तब **अग्रे**=उस प्रथम समय में, अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में **विश्वकर्मणः**=उस सारे संसार का निर्माण करनेवाले प्रभु से **पृथिव्यै**=इस पृथिवी से ही (पृथिव्याः) जो वृक्ष हुए, उन वृक्षों में ही एक फली में **रसात् च**=रस का सञ्चार करके प्रभु ने इस शरीर का पोषण किया। यह अमैथुनी सृष्टि कहलाती है। **अग्रे समवर्त्तत**=सृष्टि के प्रारम्भ में ऐसा ही हुआ। यह सृष्टि स्त्री-पुरुष के द्वन्द्व से न होकर प्रभु से ही पैदा कर दी गई। २. जिस समय वृक्ष की फली में इस शरीर का पोषण हो रहा होता है उस समय वह **त्वष्टा**=देवशिल्पी प्रभु ही **तस्य**=उसमें **रूपम्**=रूप का **विदधत्**=निर्माण करते हुए **एति**=गतिशील होते हैं। यहाँ मनुष्य को आकृति अपने माता-पिता से मिलती हैं, परन्तु अमैथुनी सृष्टि में प्रभु उसे पिछले कर्मों के अनुसार उचित रूप देते हैं। ३. **तत्**=यही **अग्रे**=सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु के द्वारा **मर्त्यस्य**=मनुष्य का **आजानम् देवत्वम्**=जन्म से देवत्व (आजान देवत्व) था । प्रभु की इस अमैथुनी सृष्टि में शुभ कर्मोंवाले लोगों की ही उत्पत्ति हुई। पीछे अपनी स्वाभाविक अल्पज्ञता तथा सांसारिक प्रलोभनों के प्रबल आकर्षण से यह जीव धीरे-धीरे आसुरी वृत्ति की ओर झुका और संसार में मनुष्य 'देव व असुर' इन दो भागों में बँट गये। ये ही अपने शुभाशुभ कर्मों के कारण आर्य व दस्यु कहलाये।

**भावार्थ**—प्रभु-कृपा से हम अपने आजनदेवत्व को स्थिर रख पाएँ। संसार के प्रलोभनों में फँसकर असुर न बन जाएँ।

ऋषिः—**उत्तरनारायणः**। देवता—**आदित्यः**। छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

## अतिमृत्यु-अयन—मृत्यु के पार

**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।**
**तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥**

१. **अहम्**=मैं **एतम्**=इस **महान्तम्**=महान्, पूजनीय **आदित्यवर्णम्**=सूर्य के समान वर्णवाले **तमसः परस्मात्**=अन्धकार से परे वर्त्तमान **पुरुषम्**=पुरुष को **वेद**=जानता हूँ। वह प्रभु पुरुष हैं, ब्रह्माण्डरूप नगरी में निवास करनेवाले हैं (पुरि वसति), सर्वव्यापक हैं। महान् हैं, विभु हैं अथवा 'मह पूजायाम्' पूजा के योग्य हैं। उस प्रभु की तेजस्विता की कल्पना सूर्य के द्वारा ही हो सकती है, हज़ारों सूर्यों की दीप्ति के समान उस प्रभु की दीप्ति है। वे प्रभु तम से परे हैं, वहाँ प्रकाश-ही-प्रकाश है, अन्धकार का वहाँ नाम ही नहीं। 'तमस्' प्रकृति को भी कहते हैं, वे प्रभु प्रकृति से भी परे हैं। प्रकृति से परे तो जीव भी है, प्रभु जीव से भी परे हैं। २. **तम्**=उस प्रकृति व जीव से परे अथवा सब अन्धकारों से परे वर्त्तमान उस ज्योतिर्मय प्रभु को **विदित्वा एव**=जानकर ही मुनष्य **मृत्युम् अतिएति**=मौत को लाँघ जाता है। 'आत्मतत्त्व का ज्ञान' जीवन का उद्देश्य है। इस उद्देश्य पर पहुँचे बिना मनुष्य

बारम्बार जन्म ग्रहण करता है। आत्मदर्शन हुआ, प्राकृतिक भोगों का रस फीका पड़ गया, उलझन समाप्त हुई और मनुष्य मृत्यु से ऊपर उठा। ३. इस प्रभु के **अयनाय**=प्राप्त करने के लिए **अन्यः पन्थाः**=दूसरा मार्ग न **विद्यते**=नहीं है। प्रभु का ज्ञान ही हमें प्रभु की ओर ले-जाता है और प्रभु को प्राप्त करके हम जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठ जाते हैं।

**भावार्थ**—प्रभु को जानकर हम मृत्यु से ऊपर उठें और मोक्ष का लाभ करें।

ऋषिः—**उत्तरनारायणः**। देवता—**आदित्यः**। छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

### अजायमान-विजायमान—न होते हुए, होना

**प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।**
**तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥१९॥**

पिछले मन्त्र में कहा था कि 'मैं इस महान् पुरुष को जानता हूँ' प्रस्तुत मन्त्र में कहते हैं कि 'किस रूप में?' (क) **प्रजापतिः**=वे प्रभु प्रजा के पति हैं। सबके रक्षक हैं। मेरी भी वे प्रभु ही रक्षा कर रहे हैं। (ख) **अजायमानः**=(जनी प्रादुर्भाव) सबके अन्दर होते हुए भी वे अप्रादुर्भूत=अव्यक्त ही हैं। वे प्रभु कभी व्यक्त नहीं होते। वे तो शरीर धारण करते ही नहीं, वे शरीर में अवतीर्ण नहीं होते। (ग) **बहुधा विजायते**=शरीर धारण न करते हुए भी वे प्रभु नानारूपों में विशेषरूप से प्रादुर्भूत होते हैं। हिमाच्छादित पर्वतों में, अनन्त विस्तारवाले समुद्रों में, अनन्त भार का वहन करनेवाली इस पृथिवी में, आकाश को आवृत-सा कर लेनेवाले नक्षत्रों में उस प्रभु की ही महिमा दिख रही होती है। शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की रचना में उस रचयिता का रचना-कौशल दिखाई दे रहा है। एक-एक फल व फूल उस रचयिता का गान करता प्रतीत होता है। एवं, कण-कण में वे प्रभु प्रकट हो रहे हैं। अजायमान वे प्रभु विजायमान बन रहे हैं, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त हो रहे हैं। (घ) **तस्य**=उस अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त प्रभु के **योनिम्**=घर व आधार को **धीराः**=विचारशील लोग ही **परिपश्यन्ति**=सर्वत्र देखते हैं। **तस्मिन्**=उस आधार में **ह**=निश्चय से **विश्वा भुवनानि**=सब लोक **तस्थुः**=ठहरे हैं। उस प्रभुरूप आधर में ये सारा ब्रह्माण्ड स्थित है **पादोऽस्य विश्वा भूतानि**=उस आधार में क्या उस आधार के भी एक देश में ही यह सारा ब्रह्माण्ड रचा गया है। कितना व्यापक है वह आधार!

**भावार्थ**—प्रभु प्रजापति हैं, नानारूपों को वो जन्म दे रहे हैं, वही सब लोकों का धारण कर रहे हैं।

ऋषिः—**उत्तरनारायणः**। देवता—**सूर्यः**। छन्दः—**अनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

### ब्राह्म-तेज

**यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानां पुरोहितः।**
**पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥२०॥**

गतमन्त्र की समाप्ति इन शब्दों पर थी कि 'उस प्रभु में ही ये सब लोक आश्रित हैं'। प्रस्तुत मन्त्र उन्हीं लोकों के वर्णन से प्रारम्भ होता है। सब लोक वैदिक साहित्य में 'देव' कहलाते हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक—सब देवता हैं, इनमें रहनेवाले अग्नि, वायु, सूर्य, भी देवता हैं। इन सब देवताओं को दीप्ति प्रभु से प्राप्त होती है। मन्त्र में कहते हैं कि उस **ब्राह्मये रुचाय**=ब्रह्म कान्ति के लिए, ब्रह्मसम्बन्धी तेज के लिए **नमः**=नमस्कार हो (क) **यः**=जो **देवेभ्यः**=सब देवों के लिए **आतपति**=चारों ओर दीप्त होता है। जैसे यहाँ सूर्य के तेज से चन्द्र, पृथिवी आदि तेजवाले प्रतीत हो रहे हैं, उसी प्रकार ये अग्नि, विद्युत् व

सूर्यादि तेज भी ब्रह्म के तेज से दीप्ति प्राप्त करते हैं। (ख) जैसे स्फटिक के सामने जपापुष्प (Rose flower) होता है तो जपापुष्प का गुलाबीपन स्फटिक में भी झलकता है, वह गुलाबीपन स्फटिक का अपना नहीं होता, इसी प्रकार वे प्रभु हैं। **यः**=जो **देवानाम्**=सब देवों के **पुरः**=सामने **हितः**=स्थापित है, उस प्रभु की दीप्ति इन देवों में झलक रही है, इन देवों की यह दीप्ति अपनी थोड़े ही है? जो प्रभु से ओझल होता है, वही दीप्ति-शून्य हो जाता है। (ग) यह प्रभु ही है **यः**=जो **देवेभ्यः**=सब देवों से **पूर्वः जातः**=पहले से हैं। पहले से ही होते हुए ये अन्य देवों को देवत्व प्राप्त कराते हैं। **येन देवा देवतामग्र आयन्**=इसी से तो देव प्रथम देवत्व को प्राप्त हुए। जो जीव भी सदा प्रभु के सामने उपस्थित रहता है वह भी ब्रह्मतेज को प्राप्त कर देवों के समान चमकने लगता है।

**भावार्थ**—प्रभु ही सब सूर्यादि देवों को दीप्ति देनेवाले हैं। उस ब्रह्मरुचि दीप्ति को प्राप्त करने के लिए मैं भी **नमस्**=नम्रता की भावना को धारण करता हूँ।

ऋषिः—**उत्तरनारायणः**। देवता—**विश्वेदेवाः**। छन्दः—**अनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**॥

## देवों का वशीकरण

**रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन्।**
**यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे॥२१॥**

गतमन्त्र की भावना यह है कि 'सूर्यादि सब देव उस ब्राह्मतेज से ही दीप्त हो रहे हैं।' उसी वाक्य से इस मन्त्र को प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि **अग्रे**=इस सृष्टि के प्रारम्भ से ही **ब्राह्मं रुचम्**=ब्रह्म-सम्बन्धी कान्ति को **जनयन्तः**=प्रकट करते हुए **देवाः**=अग्नि, विद्युत्, सूर्यादि ये सब देव **तत् अब्रुवन्**=इस बात को कहते हैं कि **यः ब्राह्मणः**=जो ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करनेवाला व्यक्ति **तु**=भी **एवं विद्यात्**=इस प्रकार जान लेता है **तस्य**=उसके **देवाः**=सब देव **वशे असन्**=वश में होते हैं।

सूर्यादि सब देव प्रभु की दीप्ति से ही तो दीप्त हो रहे हैं। ये चमकते हुए सूर्यादि देव सनातन काल से मानो यही उद्घोषणा कर रहे हैं कि जो भी ब्रह्मवेत्ता पुरुष इस तत्त्व को समझ लेगा और ब्रह्म से अपने को ओझल न करेगा, वह भी ब्रह्म के तेज से तेजस्वी होगा।

**भावार्थ**—ब्रह्मवेत्ता को सब देवों की अनुकूलता प्राप्त होती है।

ऋषिः—**उत्तरनारायणः**। देवता—**आदित्यः**। छन्दः—**निचृदार्षीत्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

## एक आदर्श ब्रह्मवेत्ता का जीवन

**श्रीश्चं ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।**
**इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण॥२२॥**

'सब देव उसके अनुकूल होते है' इस वाक्य का अभिप्राय यह है कि कोई भी प्राकृतिक शक्ति उसके प्रतिकूल नहीं होती, अर्थात् जल-वायु आदि सदा उसके अनुकूल होते हैं। परिणामतः वह स्वस्थ, सबल व सुन्दर शरीरवाला होता है, स्वस्थ शरीर में उसका मन व मस्तिष्क भी स्वस्थ होता है। शरीर का स्वास्थ्य उसे 'श्री'-सम्पन्न बनाता है और मन व मस्तिष्क का स्वास्थ्य ज्ञान की 'लक्ष्मी' से युक्त करता है। इसी श्री व लक्ष्मी का उल्लेख प्रस्तुत मन्त्र में करते हैं—

१. 'श्री' स्वास्थ्यजनित सौन्दर्य का नाम है तथा 'लक्ष्मी' लक्ष दर्शनांकनयोः धातु से बनकर ज्ञान का वाचक है, ज्ञान की प्रक्रिया यही तो होती है कि हम दर्शन=देखते हैं और

हमारे मस्तिष्क पर उसका अंकन=छाप हो जाती है। इस प्रकार हमें उस वस्तु का ज्ञान हो जाता है। ब्रह्म अपने वेत्ता इस ब्राह्मण से कहते हैं कि **श्रीः च लक्ष्मीः च**=श्री और लक्ष्मी **ते**=तेरी **पत्न्यौ**=पत्नियाँ हैं। ये तेरे जीवन के अंग part and parcel बन गये हैं। (ख) 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे' इस व्याकरणसूत्र के अनुसार ये श्री और लक्ष्मी यज्ञ के लिए तेरे साथ संयुक्त हुई हैं। तेरी शक्ति व तेरा ज्ञान दोनों यज्ञ में विनियुक्त होते हैं। २. **अहोरात्रे पार्श्वे**=अहन् और रात्रि ये तेरे जीवन के दो पहलू हैं। तेरे जीवन का पहला सिद्धान्त तो 'अहन्'=एक भी क्षण आलस्य में नष्ट न करना है। एक-एक क्षण तेरा कार्य में व्याप्त है। तेरे जीवन का दूसरा पहलू यह है कि तू इस कार्यव्यापृतता में रमण करता है (रात्रिः= रमयित्री)। तू कार्य में लगा रहता है और उसमें आनन्द का अनुभव करता है। तू कर्म को ही अपना क्षेत्र मानता है और उसी में लगा रहकर एक मस्ती को अपने जीवन में ला-पाता है। ३. **नक्षत्राणि रूपम्**=नक्षत्र तेरे रूप हैं 'न क्षीयते इति नक्षत्रम्' नक्षत्र इसलिए नक्षत्र हैं कि वे क्षीण नहीं होते। यह क्षीण न होना अक्षीणता ही तेरा रूप=Pattern, नमूना है। ये तेरे जीवन के आदर्श हैं, पुरोहित model हैं। मैं भी इन नक्षत्रों की भाँति अक्षीण चमक से चमकता रहूँगा। ४. (क) **अश्विनौ व्यात्तम्**=ये द्यावापृथिवी तेरे खुले मुख हैं। तेरा मुख ही तेरा मुख नहीं, अपितु द्युलोक व पृथिवीलोक में रहनेवाले सारे प्राणी ही तेरे मुख हैं। तूने अकेले नहीं खाना, सभी के साथ मिलकर खाना है अथवा (ख) **अश्विनौ**=श्रोत्र, ये तेरे कान तेरे ख़ूब खुले मुख बन गये हैं। जैसे मुख से मनुष्य ग्रास को लेता है उसी प्रकार तेरे कान सदा ज्ञान के ग्रासों को खाने में लगे हैं, तू तो ब्रह्म (ज्ञान) चर्वण (भक्षण) करनेवाला ब्रह्मचारी हो गया है। (You have become a voracious reader) ५. इसी ज्ञानभक्षण में लगे रहने का परिणाम है कि तू **इष्णन्**=(to strike, to smite) वासनाओं पर चोट करनेवाला बना है। इस प्रकार सब वासनाओं पर चोट करता हुआ तू **इषाण**=सब लोगों को इस मार्ग पर चलने के लिए उत्साहित कर। तेरा पवित्र जीवन औरों को भी उसे अपनाने के लिए प्रेरणा दे। ६. **मे**=मेरी **अमुम्**=उस ब्राह्मरुचि को, जो सब देवों को दीप्त कर रही है तू भी **इषाण**=(to promote) अपने अन्दर बढ़ाने का प्रयत्न कर और इस प्रकार ७. **मे सर्वलोकम्**= मेरी इस सारी दुनिया को तू **इषाण**=प्रेरणा देनेवाला बन। तू अपने जीवन की वासनाओं को समाप्त करके और ब्रह्मकान्ति को धारण करके ही औरों को उत्तम प्रेरणा दे पाएगा। इस प्रकार का बनकर ही तू 'उत्तर-नारायण'=नरसमूह का उत्कृष्ट शरणस्थान बनेगा।

**भावार्थ**—नर से नारायण बनने के लिए मन्त्र में वर्णित ७ बातों को अपनाना है।

**इत्येकत्रिंशोऽध्यायः॥**